हज़रत इमाम हसने मुजतबा (अ0)

सैय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़्वी (ताबा सराह)

विलादतः 15 रमज़ान 2 या 3 हिजरी
वफातः 28 सफर 50 हिजरी

इमामे हसन मुजतबा (अ0) की विलादत 2 हिजरी या 3 हिजरी में हुई। रसूल (स0) की वफात के वक़्त सातवाँ या आठवाँ साल था और उनकी यह उम्र पूरी पैग़म्बरे ख़ुदा (स0) के गज़वात की उम्र है। 2 हिजरी में जंगे बद्र हुई और इसके बाद उनकी उम्र के साथ गज़वात की फेहरिस्त आगे बढ़ी। जिस तरह अली (अ0) की परवरिश पैग़म्बर की गोद में तबलीग़े इस्लाम के साथ वैसे ही हसने मुजतबा (अ0) की परवरिश रसूल की गोद में रसूल (स0) के गज़वात और अपने वालिद (हज़रत अली–ए–मुर्तज़ा अ0) के फतूहात के साथ। इनके बचपन की कहानियाँ और सोते वक़्त की लोरियाँ गोया यही थीं कि अली (अ0) किसी जिहाद से वापस आए हैं। हज़रत फातमा ज़हरा (अ0) से तज़केरह हो रहा है ख़न्दक़ में यह हुआ। यह तज़केरे कानों में पड़ रहे हैं और आँखें जो देख रही हैं वह यह कि दुश्मनों के ख़ून में भरी हुई तलवार है और सय्यिद–ए–आलम (स0) उसे साफ कर रही हैं। पैग़म्बर (स0) के इरशादात भी कानों में गूँज रहे हैं कभी मालूम हुआ कि आज नाना ने वालिदे बुज़ुर्गवार के लिये कहा :

''ज़रबतु अलिय्यिन यौमल ख़न्दक़िन अफ़ज़लु मिन इबादतिस्सक़लैन'' कभी सुना कि फरमाया : ''लऊतयन्नर्राअ्यतन ग़दन रजुलन कर्रारन ग़ैरे फरारिन युहिब्बुल्लाहा व रसूलहू'' कभी मलक की सदा कानों में पड़ती : ''ला फता इल्ला अली ला सैफा इल्ला ज़ुलफिक़ार'' इन तज़किरों के अलावा बस है तो इबादत और सख़ावत की मिसालों का मुशाहेदा। यह है सात आठ साल का हसन (अ0) का रसूल (स0) की ज़िन्दगी में दौरे हयात।

सात आठ साल की उम्र के बच्चे चाहे मामलात में अमली हिस्सा न लें और अदब व हिफ्ज़े मरातिब की बिना पर बुज़ुर्गों के सामने गुफ्तगू में भी शिरकत न करें मगर वह एहसासात व तास्सुरात, जज़्बात और क़ल्बी वारदात में बिलकुल बुज़ुर्गों के साथ शरीक रहते हैं और उनके दिलों के अन्दर वलवलों का तूफान भी उठता है। और मन्सूबों की इमारतें भी खड़ी होती हैं और उस वक़्त के तास्सुरात व तसव्वुरात के निशान इतने गहरे होते हैं कि वह मिटा नहीं करते।

यक़ीनन यह इतना ज़िन्दगी का दौर इमामे हसन (अ0) के दिल व दिमाग़ में आम इन्सानी फितरत के लिहाज़ से वलवला व हिम्मत की लहरों में तमुव्वुज ही पैदा करने वाला था सुकून पैदा करने वाला नहीं मगर इस सात आठ साल के बाद एकदम वरक़ उलटता है अब यह मन्ज़र सामने है कि बाप गोशानशीन है और माँ गिरया करने वाली है। वह तमाम नागवार हालात सामने हैं जिनका इज़हार किसी के लिए पसन्दीदा है या नापसन्द। मगर तारीख़ के अन्दर वह मौजूद और हमेशा के लिए महफूज़ हैं यक़ीनन अगर हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) का दस साल की उम्र के बाद 13 साल रसूल (स0) के साथ रहकर

मक्का की ख़ामोश ज़िन्दगी में ख़ामोशी के रास्ते पर क़ाएम रहना एक जिहादे नफ्स था तो हसने मुजतबा (अ0) का भी 8 साल की उम्र के बाद पच्चीस साल बाप के सब्र व इस्तेक़लाल के साथ जुड़े रहना उनका अज़ीम जिहाद था वहाँ अली(अ0) के सामने उनके मुरब्बी रसूल (स0) के जिस्म पर पत्थर फेंके जाते थे और वह ख़ामोश थे और यहाँ हसन (अ0) के सामने उनके बाप अली बिन अबी तालिब (अ0) के गले में रस्सी बाँधी जाती है और मादरे ग्रामी के दरवाज़े पर आग लगाने के लिए लकड़ियाँ जमा की जाती हैं और उन्हें हर तरह की तकलीफें पहुँचायी जाती हैं और हसने मुजतबा (अ0) ख़ामोश हैं इसी ख़ामोशी में 8 साल से 18 साल और 18 साल से 28 साल बल्कि सात आठ साल की उम्र के बाद 25 साल में तेंतीस साल के हुए मगर वह जिस तरह सात आठ साल के बचपन के दौर में हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) के साथ एक कम उम्र बच्चे की तरह थे बिलकुल उसी शान से 18 और 28 और तीस बत्तीस साल के जवान होकर भी हैं। मसलक है तो बाप का, तरीक़–ए–कार है तो बाप का, न इनके बचपन में कोई नादानी का क़दम उठता है न जवानी में कोई जोश का इक़दाम होता है फिर हज़रत अली (अ0) ने ख़ामोशी के माहोल में आँख खोली थी और इमामे हसन (अ0) तो आठ साल की उम्र इस जंग के माहोल में गुज़ार चुके थे जिससे बहादुरी के इक़दामात को तबीअत में रस–बस जाना चाहिए इसके बाद 25 साल इस तरह गुज़ार रहे हैं। इतनी तूलानी मुद्दत के अन्दर कभी जोश में न आना। अपने हमउम्रों से कभी झगड़ा न होना, किसी दफा भी ऐसी कोई बात न होना जो मस्लहते अली (अ0) के ख़िलाफ हो। यह उनकी ज़िन्दगी का कारनामा है। यह और बात है कि तारीख़ की धुंधली निगाह हरकत को देखती है सुकून को नहीं, आँधियों को देखती है सन्नाटे को नहीं, तूफान की आवाज़ को देखती है समन्दर के सुकून पर नज़र नहीं डालती। इसी का नतीजा है कि इस दौर के फतूहात जो अक्सरियती ताक़त ने किए तारीख़ का हिस्सा बन गये और इस्लाम की जो ख़िदमत ख़ामोश रहकर की गयी और उसके जो नतीजे हुए वह तारीख़ में कहीं नज़र न आएंगे बहर हाल अब यह 25 साल गुज़रे और वह वक़्त आया जब हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) हुकूमत में हैं इसके बाद जमल, सिफ्फीन और नहरवान की जंगें हैं और हज़रत इमामे हसन (अ0) उनमें अपने वालिदे बुज़ुर्गवार हैदरे कर्रार के साथ–साथ हैं।

हसन (अ0) के हाथ में जंगे जमल की लड़ाई में तलवार उसी तरह पहली बार है जिस तरह बद्र में अली (अ0) के हाथ में पहली बार। मगर जैसे उन्होंने पहली ही लड़ाई में बड़े बहादुरों पर अपनी बड़ाई साबित कर दी वैसे ही जमल में जो कारनामा दूसरों से नहीं होता वह हसने मुजतबा (अ0) अपनी तलवार से करके दिखा देते हैं।

इसी तरह सिफ्फीन में ऐसा मेयारी नमूना पेश करते हैं कि हज़रत अमीर (अ0) अपने बेटे मुहम्मद हनफिया के लिए इसे मिसाल क़रार देते हैं और जैसा कि दिनयवी ने ''अलअख़बारुत्तिवाल'' में लिखा है कि एक ऐसे मौक़े पर जब लश्करे अमीरुलमोमिनीन के एक बड़े हिस्से ने शिकस्त खायी थी, यह अपने बाप के सामने इस तरह थे कि उन्हें तीरों से बचा रहे थे और ख़ुद अपने को तीरों के सामने पेश किए देते थे।

मुख़ालिफ हुकूमत का प्रोपगन्डा भी क्या

चीज़ है! उसने हिकायतें लिखीं हैं कि हसन मुजतबा (अ0) तो मिज़ाज से सुलह पसन्द थे। मगर उनकी बेजिगरी के साथ इन नबरद आज़माइयों में अमली शिरकत इन तसव्वुरात को ग़लत साबित कर देती है।

जंगे जमल में कूफा वालों को अबुमूसा अशअरी ने जो वहाँ हाकिम थे नुसरते अमीरुलमोमिनीन से रोक दिया था। यह हसने मुजतबा (अ0) ही थे जिन्होंने जाकर तक़रीर की और पूरे कूफे को जनाबे अमीर (अ0) की नुसरत के लिए आमादा कर दिया।

हाँ जब सिफ्फीन में नेज़ों पर क़ुर्आन उठाए गए और अमीरुलमोमिनीन ने हालात से मजबूर होकर मुआहेद–ए–तहकीम पर दस्तख़त किए तो जवान साल बेटे हसन व हुसैन (अ0) दोनों बाप के साथ इस मुआहेदे में भी शरीक थे बिलकुल जिस तरह हज़रत अमीर (अ0) पैग़म्बरे ख़ुदा (स0) के साथ–साथ जंग और सुलह दोनों में। इसी तरह हसन व हुसैन (अ0) अपने वालिदे बुज़ुर्गवार के साथ हर मन्ज़िल में शरीक नज़र आते हैं।

जब 21 रमज़ान 40 हिजरी को जनाबे अमीर (अ0) की वफात हो गयी और हज़रत इमाम हसन (अ0) ख़लीफा तसलीम किए गए तो आप ने ख़ुद भी हाकिमे शाम के ख़िलाफ फौजकशी की। और फौजों को लेकर रवाना भी हुए और इस तरह भी साबित कर दिया कि रास्ता आपका वही है जो आपके वालिदे बुज़ुर्गवार का रास्ता था।

अब इसके बाद जो कुछ हुआ वह हालात की तबदीली का नतीजा था। वाक़ेआ यह है कि अह्ले कूफा की अक्सरियत जंगे नहरवान के बाद से जनाबे अमीर (अ0) के साथ ही सर्दमोहरी बरतने लगी थी और जंग से आजिज़ आ चुकी थी जिस पर ख़ुद हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) के अक़्वाल जो नह्जुल बलाग़ा में मज़कूर हैं, गवाह हैं इसका इल्म हाकिमे शाम को भी अपने आदमियों के ज़रिये से हो गया था चुनानचे हज़रत अमीर (अ0) के बाद उन्होंने अपने आदमियों के ज़रिये से बहुत से रोसा–ए–कूफा को अपने साथ मिला लिया और उन लोगों ने ख़त भेजे कि आप इराक़ पर हमला कीजिए और हम यहाँ ऐसी तदबीर करेंगे कि हज़रत इमाम हसन (अ0) को क़ैद करके आपके हवाले कर देंगे।

मुआविया ने यह ख़त उसी तरह हज़रत इमामे हसन (अ0) के पास भेज दिये। फिर भी वह जानते थे कि हज़रत इमामे हसन (अ0) कोई ऐसी सुलह कभी न करेंगे जिसमें उनके नुक़्त–ए–नज़र से हक़ की हिफाज़त न हो। इसलिए उन्होंने इसके साथ एक सादा काग़ज़ भेज दिया कि जो शर्तें आप चाहें इस पर लिख दें मैं उन्हें मन्ज़ूर करने के लिए तैयार हूँ। इन हालात में जबकि अपनों का हाल वह था और मुख़ालिफ यह अन्दाज़ इख़्तियार कर रहा था जंग पर क़ाएम रहना एक बिला वजह की ज़िद होती जो आले रसूल (स0) की शान के ख़िलाफ थी।

हज़रत पैग़म्बरे ख़ुदा (स0) ने तो हुदैबिया में अमन व अमान की ख़ातिर मुशरिकीन की पेश की हुई शर्तों पर सुलह की जिसे सतही निगाह वाले मुसलमान समझ रहे थे कि यह दब कर सुलह है और हज़रत इमामे हसन (अ0) ने जो सुलह की वह उन शर्तों पर जो ख़ुद आपने पेश कीं और जिन्हें मुख़ालिफ फरीक़ से मन्ज़ूर कराया।

ज़रा इस सुलह नामे की शर्तों पर नज़र डालिये। इसकी मुकम्मल इबारत अल्लामा इब्ने हजर मक्की ने ''सवाएक़े मुहर्रिक़ा में दर्ज की है।

इसमें पहली शर्त यह है कि हाकिमे शाम किताब व सुन्नत पर अमल करेंगे इस शर्त को मन्जूर कराके हज़रत इमामे हसन (अ0) ने वह उसूली फतह हासिल की है जो जंग से हासिल होना मुमकिन न थी।

ज़ाहिर है कि सुलह नामे की शर्तों में बुनियादी तौर पर ऐसी ही चीज़ दर्ज होती है जो झगड़े की बुनियाद हो। हज़रत इमामे हसन (अ0) ने यह शर्त लगाकर साबित कर दिया कि हमारे झगड़े की जड़ मुआविया से कोई ज़ाती या ख़ानदानी नहीं बल्कि वह सिर्फ यह है कि हम किताब और सुन्नते रसूल (स0) पर अमल के तलबगार हैं और यह इससे अब तक मुनहरिफ रहे हैं। फिर सुलह नामे की दस्तावेज़ तो दोनों फरीक़ों के इत्तेफाक़ से हुआ करती है वह दोनों फरीक़ इसके कातिब होते हैं। यह शर्त दर्ज करके इमामे हसन (अ0) ने हाकिमे शाम से तसलीम करा लिया कि अब तक हुकूमते शाम का जो कुछ रवैय्या रहा है वह किताब व सुन्नत के ख़िलाफ है। अगर ऐसा न होता तो इस शर्त की क्या ज़रूरत थी?

नासमझ दुनिया कहती है कि इमामे हसन (अ0) ने बैअत कर ली। मैं कहता हूँ अगर हक़ीक़त पर ग़ौर कीजिये तो जब इमामे हसन (अ0) शरीअते इस्लाम की हिफाज़त करने वाले हैं और आप ने इसका इक़रार हासिल किया है कि हाकिमे शाम किताब व सुन्नत के मुताबिक़ अमल करेंगे तो अब यह फैसला आसान है कि जिसने शर्तें मानीं उसने बैअत की या जिसने शर्तें मनवायीं उसने बैअत की। हक़ीक़त में हज़रत इमामे हसन (अ0) ने तो बैअत ले ली, ख़ुद बैअत नहीं की।

दूसरी शर्त यह थी कि तुम्हें किसी को अपने बाद नामज़द करने का इख़्तियार न होगा इस तरह हज़रत इमामे हसन (अ0) ने बफ़र्ज़े मुख़ालफत पहली शर्त के उस नुक़सान को जो हाकिमे शाम की ज़ात से मज़हब को पहुँचता महदूद बनाया और आइन्दा के लिए यज़ीद जैसे लोगों का दरवाज़ा बन्द कर दिया।

हाकिमे शाम के पैरो ज़ियादा नुमाया तौर पर यह शर्त पेश करते हैं कि हज़रत इमामे हसन (अ0) ने सालाना एक रक़म मुक़र्रर की थी कि यह तुम्हें अदा करना होगी मैं कहता हूँ कि यह शर्त अगरचे साबित नहीं है फिर भी अगर यह शर्त रखी हो तो यह क़ानूनी हैसियत से अपने असली हक़दारे हुकूमत होने का एतराफ करने का फरीक़े मुख़ालिफ के अमल से क़ाएम रखना है और अगर ज़ियादा गहरी नज़र से देखा जाए तो हज़रत रसूले ख़ुदा (स0) का ईसाइयों से जिज़्या लेकर जंग को ख़त्म कर देना दुरुस्त है तो हज़रत इमामे हसन (अ0) का हाकिमे शाम पर सालाना एक टैक्स लगा देना भी बिलकुल सही है यह अमली मुज़ाहेरा है इसका कि हम ने दबकर सुलह नहीं की है बल्कि ख़ूँरेज़ी से बचने की मुमकिन कोशिश की है।

हज़रत इमामे हसन (अ0) को इस सुलह पर बाक़ी रहने में भी कितनी परेशानियाँ और ज़बानी ज़ख़्मों का मुक़ाबला करना पड़ा मगर दीनी फाएदे के लिए यह सुलह ज़रूरी थी तो पुरजिगरी के साथ हज़रत तमाम परेशानी और रुसवाई के सदमों को बर्दाश्त करते रहे। और दस साल बराबर फिर गोशानशीनी के साथ ज़िन्दगी गुज़ारकर हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) के 25 साल के दौरे गोशानशीनी का मुकम्मल नमूना पेश कर दिया।

उमवी ज़हनियत वालों का यह प्रोपगण्डा कि हसने मुजतबा (अ0) अपने वालिदे बुज़ुर्गवार हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) और अपने

(बक़िया पेज 14 पर)

हदें अल्लाह तआला की तरफ से क़तई तौर पर मुतऐय्यन कर दी गयी हैं और उसे माकूलियत की हद से आगे बढ़ने से रोक दिया गया है।

यह बात भी ध्यान देने के क़ाबिल है कि इस्लाम ने मर्द को ख़ानदान के ज़िम्मेदार का रुतबा अता करते वक़्त औरत की इज़्ज़त की चाहत को नज़रअन्दाज़ नहीं किया और उसे घर के कामों का ज़िम्मेदार बनाया है।

रसूले अकरम (स0) ने इरशाद फरमाया है:–

''हर इन्सान आज़ाद और अपने इरादे का मालिक है। मर्द को घर वालों के इन्तिज़ाम और औरत को घरदारी के मामलों में आज़ादी और इख़्तियार हासिल है।''

रसूल अकरम (स0) ने फरमाया है :–

''तुम सब अपने–अपने हिस्से के सरपरस्त और निगराँ हो और सभी अपनी–अपनी ज़िम्मेदारी के लिए जावब देने वाले हो। हाकिम और इमाम क़ौम के लिए जवाब देने वाला है, मर्द ख़ानदान के लिए जवाबे देने वाला है, औरत घर के कामों और औलाद के लिए जवाब देने वाली है और जो कोई जितना इख़्तियार रखता है उसके लिए जवाब देने वाला है और जो फराएज़ अल्लाह तआला ने उसके ज़िम्मे किये हैं उनके अन्जाम देने का ज़िम्मेदार है।'' (सहीह बुख़ारी जिल्द–3 बाबुन्निकाह)

इसके अलावह कुर्आने मजीद में मर्दों को खुले तौर पर याद दहानी करायी गयी है कि :–

''अपनी बीवियों से नेकी और मेहरबानी का सुलूक करो और ना इन्साफी और बदज़बानी से परहेज़ करो।'' (सूर–ए–निसा आयत–19)

□□□ **(जारी)**

(बक़िया इमाम हसने मुजतबा अ0 ...)

छोटे भाई हज़रत इमामे हुसैन (अ0) से अलग सोंच रखते थे और वह सुलह उनकी अकेली सोंच का नतीजा थी। ख़ुद उमवी हाकिमे शामी के अमल से भी ग़लत साबित हो जाता है इस तरह कि अगर यह बाद वाला प्रोपगण्डा सही होता तो इस सुलह करने के बाद हाकिमे शाम को हज़रत इमाम हसन (अ0) से बिलकुल मुतमइन हो जाना चाहिए था बल्कि हाकिमे शाम की तरफ से हक़ीक़त में फिर इमामे हसन (अ0) की क़द्र व मन्ज़िलत के मुसलमानों में बढ़ाने और नुमायाँ करने की कोशिश की जाती। बेशक जिस तरह मशहूर रिवायत की बुनियाद पर जनाबे अक़ील को हज़रत अली बिन अबी तालिब (अ0) से बज़ाहिर जुदा करने के बाद उनकी ख़ातिर दारियों में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी थी। यही बल्कि इससे ज़ियादा हज़रत इमाम हसन (अ0) के साथ होता मगर ऐसा नहीं हुआ। सुलह करने के बाद भी इमामे हसन को आराम और चैन नहीं लेने दिया गया और आख़िरकार ज़हर देकर आपको शहीद कर दिया गया। इसी से ज़ाहिर है कि हाकिमे शाम भी जानते थे कि यह राय, मसलक, ख़याल और तबीअत किसी एतबार से भी अपने बाप, भाई से जुदा नहीं हैं। यह और बात है कि उस वक़्त इन्हें फ़र्ज़ का तक़ाज़ा यही महसूस हुआ लेकिन अगर मसलेहते दीनी में तबदीली हो तो यही कोई नया सिफ्फीन का माअरका फिर से लगा सकते थे और इन्हीं के हाथ से कर्बला भी सामने आ सकती थी इसीलिए इनकी ज़िन्दगी इस के बाद भी इनके सियासी मक़ासिद के लिए ख़तरा बनी रही और जब इनकी शहादत की ख़बर मिली तो उन्होंने चैन की साँस ही नहीं ली बल्कि अपने सियासी बर्दाश्त के दायरे से बाहर निकलकर एलानिया उन्होंने खुशी से नार–ए–तकबीर बुलन्द किया। इससे साफ ज़ाहिर है कि हसने मुजतबा (अ0) की सुलह किसी ख़ास सोंच और तबीअत का नतीजा नहीं थी, वह सिर्फ फ़र्ज़ के उस एहसास का तक़ाज़ा थी जो इन्सानी बुलन्दी की मेराज है।

□□□